TEXT 3

श्रीभगवानुवाच
लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ ।
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम् ॥३॥

अन्वय

श्रीभगवान् उवाच (श्रीभगवानुने कहा) अनघ (हे निष्पाप अर्जुन !) मया पुरा प्रोक्ता (मेरे द्वारा पहले ही प्रकृष्टरूपसे बताया गया है) अस्मिन् लोके (इस लोकमें) द्विविधा (दो प्रकारकी) निष्ठा (नित्य स्थिति या मर्यादा है) सांख्यानाम् (सांख्यवादी ज्ञानियोंकी) ज्ञानयोगेन (ज्ञानयोगसे) योगिनाम् (योगियोंकी) कर्मयोगेन (कर्मयोगसे) ॥3.3॥

Text

श्रीभगवान ने कहा – हे निष्पाप अर्जुन! मैं पहले ही बता चुका हूँ कि आत्म-साक्षात्कार का प्रयत्न करने वाले दो प्रकार के पुरुष होते हैं | कुछ इसे ज्ञानयोग द्वारा समझने का प्रयत्न करते हैं, तो कुछ भक्ति-मय सेवा के द्वारा |

गीता भूषण टीका 3.3

प्रश्न पूछे जाने पर भगवान अब यहां उत्तर दे रहे हैं। हे *अनघ* अर्थात हे निष्पाप बुद्धि वाले पार्थ ! आप कर्मनिष्ठ बुद्धि और ज्ञान निष्ठ बुद्धि के प्रधान गुणों के भाव को जानते हो जो परापर विरोधी स्वभाव के हैं जैसे तेज और तम तो आप इस शंका से प्रेरित होकर क्यों पूछ रहे हैं की आप का अधिकार क्या है ?

{यह शंका अर्जुन ने ज्यायसी चेत् कर्मणस् वाले ३.१ श्लोक में प्रस्तुत करी थी }

मुझ सर्वेश्वर के द्वारा पिछले अध्याय में दो प्रकार की निष्ठाओं का वर्णन हुआ था जो दो प्रकार के लोगों में पाई जाती है और उस निष्ठा का कारण उनका शुद्ध या अशुद्ध चित्त होता है और उनकी मुक्ति की अभिलाषा होती है |

{ कर्म योगी , कर्म योग के द्वारा कर्म बंधन से मुक्त होते हैं और ज्ञान योगी इन्द्रिय संयम के द्वारा | लेकिन दोनों ही मुक्त होना चाहते हैं |}

निष्ठा शब्द एकवचन में है ना कि द्विवचन में, यह इंगित करता है कि एक प्रकार की ही निष्ठा होती है अर्थात अर्थ यह है कि दोनों ही निष्ठाओं का उद्देश्य आत्मसाक्षात्कार ही होता है। ऐसा नहीं है कि दो

निष्ठाएं हैं जिनमें दो प्रकार की साधना और साध्य हो अपितु एक ही निष्ठा है जिसके दो प्रकार हैं लेकिन उद्देश्य एक ही है। इसको आगे पांचवें अध्याय में श्लोक 5 में वर्णन किया जाएगा|

यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते ।

एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति सः पश्यति ॥5.5॥

जो यह जानता है कि विश्लेषात्मक अध्ययन (सांख्य) द्वारा प्राप्य स्थान भक्ति द्वारा भी प्राप्त किया जा सकता है, और इस तरह जो सांख्ययोग तथा भक्तियोग को एकसमान देखता है, वही वस्तुओं को यथारूप में देखता है |

इस निष्ठा के दो प्रकार होते हैं:ज्ञानियों की निष्ठा, जो ज्ञान योग में नियोजित होते हैं और योगियों की निष्ठा जो कर्मयोग में नियोजित होते

हैं| सांख्य का अर्थ है ज्ञान और यह उस व्यक्ति को इंगित करता है जो सांख्य को धारण करता है| ज्ञानियों की इस निष्ठा को ज्ञान योग के द्वारा दूसरे अध्याय में वर्णित किया गया था यथा

श्रीभगवानुवाच

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान् ।

आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥2.55॥

श्रीभगवान् ने कहा – हे पार्थ! जब मनुष्य मनोधर्म से उत्पन्न होने वाली इन्द्रियतृप्ति की समस्त कामनाओं का परित्याग कर देता है और जब इस तरह से विशुद्ध हुआ उसका मन

आत्मा में सन्तोष प्राप्त करता है तो वह विशुद्ध दिव्य चेतना को प्राप्त (स्थितप्रज्ञ) कहा जाता है |

वह ज्ञान ही योग है.योग का अर्थ है वह प्रक्रिया जिसके द्वारा व्यक्ति आत्मा से युक्त होता है तो इस स्थिति में वह प्रक्रिया ज्ञान है।

कर्मयोग में निष्ठा को निष्काम कर्म योगियों का वर्णन करके समझाया गया था दूसरे अध्याय में यथा

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ॥2.47॥

तुम्हें अपने कर्म (कर्तव्य) करने का अधिकार है, किन्तु कर्म के फलों के तुम अधिकारी नहीं हो | तुम न तो कभी अपने आपको अपने कर्मों के फलों का कारण मानो, न ही कर्म न करने में कभी आसक्त होओ |

कर्म भी योग है क्योंकि कर्म के द्वारा भी व्यक्ति हृदय के शुद्धिकरण से जुड़ता है जो ज्ञान को उत्पन्न करता है।

यह कहा जा रहा है कि जो मुक्ति के इच्छ रखता है वह ज्ञान में निष्ठा तुरंत ही प्राप्त नहीं कर सकता और तुरंत ही इंद्रियों को रोक नहीं सकता है अपितु उसे पहले अपना हृदय कर्मयोग और उसमें निहित नियत कर्मों के द्वारा शुद्ध

करना होता है। इसको मैंने पिछले श्लोकों में बताया था यथा

एषा तेऽभिहिता सांख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां शृणु।

बुद्ध्या युक्तो यया पार्थ कर्मबन्धं प्रहास्यसि ॥2.39॥

यहाँ मैंने वैश्लेषिक अध्ययन (सांख्य) द्वारा इस ज्ञान का वर्णन किया है | अब निष्काम भाव से कर्म करना बता

रहा हूँ, उसे सुनो! हे पृथापुत्र! तुम यदि ऐसे ज्ञान से कर्म करोगे तो तुम कर्मों के बन्धन से अपने को मुक्त कर सकते हो |

Purport

द्वितीय अध्याय के उन्तालीसवें श्लोक ने दो प्रकार की पद्धतियों का उल्लेख किया है – सांख्ययोग तथा कर्मयोग या बुद्धियोग | इस श्लोक में इनकी और अधिक स्पष्ट विवेचना

की गई है | सांख्ययोग अथवा आत्मा तथा पदार्थ की प्रकृति का वैश्लेषिक अध्ययन उन लोगों के लिए है जो व्यावहारिक ज्ञान तथा दर्शन द्वारा वस्तुओं का चिन्तन एवं मनन करना चाहते हैं | दूसरे प्रकार के लोग कृष्णभावनामृत में कार्य करते हैं जैसा कि द्वितीय अध्याय के इकसठवें श्लोक में बताया गया है | उन्तालीसवें श्लोक में भी भगवान् ने बताया है कि बुद्धियोग या कृष्णभावनामृत के

सिद्धान्तों पर चलते हुए मनुष्य कर्म के बन्धनों से छूट सकता है तथा इस पद्धति में कोई दोष नहीं है | इकसठवें श्लोक में इसी सिद्धान्त को और अधिक स्पष्ट किया गया है – कि बुद्धियोग पूर्णतया परब्रह्म (विशेषतया कृष्ण) पर आश्रित है और इस प्रकार से समस्त इन्द्रियों को सरलता से वश में किया जा सकता है | अतः दोनों प्रकार के योग धर्म तथा दर्शन के रूप में अन्योन्याश्रित हैं |

दर्शनविहीन धर्म मात्र भावुकता या कभी-कभी धर्मान्धता है और धर्मविहीन दर्शन मानसिक ऊहापोह है | अन्तिम लक्ष्य तो श्रीकृष्ण हैं क्योंकि जो दार्शनिकजन परम सत्य की खोज करते रहते हैं, वे अन्ततः कृष्णभावनामृत को प्राप्त होते हैं | इसका भी उल्लेख भगवद्गीता में मिलता है | सम्पूर्ण पद्धति का उद्देश्य परमात्मा के सम्बन्ध में अपनी वास्तविक स्थिति को समझ लेना है |

इसकी अप्रत्यक्ष पद्धति दार्शनिक चिन्तन है, जिसके द्वारा क्रम से कृष्णभावनामृत तक पहुँचा जा सकता है | प्रत्यक्ष पद्धति में कृष्णभावनामृत में ही प्रत्येक वस्तु से अपना सम्बन्ध जोड़ना होता है | इन दोनों में से कृष्णभावनामृत का मार्ग श्रेष्ठ है क्योंकि इसमें दार्शनिक पद्धति द्वारा इन्द्रियों को विमल नहीं करना होता | कृष्णभावनामृत स्वयं ही शुद्ध करने वाली प्रक्रिया है और भक्ति की

प्रत्यक्ष विधि सरल तथा दिव्य होती है |